विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी

तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, भगवत्प्रेमी महापुरुष दो प्रकारके होते हैं–1) अवधूत कोटिके और 2) आचार्य कोटिके। अवधूत कोटिके महापुरुष तो अवधूतोंके लिये ही आदर्श होते हैं, सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये नहीं। परन्तु आचार्य कोटिके महापुरुष सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये आदर्श होते हैं। परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज आचार्य कोटिके महापुरुष थे। इसलिये उनकी साधारण-से-साधारण क्रिया भी दूसरोंके लिये आदर्श होती थी। उदारणार्थ, अनेक लोग अपनी वसीयत लिखा करते हैं, जो केवल उन्हींके लिये (व्यक्तिगत) उपयोगी होती है; परन्तु श्रीस्वामीजी महाराजने जो वसीयत लिखवायी, वह मनुष्यमात्रके लिये उपयोगी, कल्याणकारक हो गयी! जब वसीयत लिखी जा रही थी, तब श्रीस्वामीजी महाराजने मुझसे कहा था कि **'साधारण-से-साधारण कोई भी कार्य क्यों न हो, उसको करनेमें भी यह ख्याल रखना चाहिये कि इससे दूसरोंको भी लाभ हो। इसलिये वसीयत जैसी चीजमें भी यह ख्याल रखना चाहिये कि इससे भी पढ़नेवालेको लाभ हो जाय'।**

श्रीस्वामीजी महाराजके भीतर एक ही लगन थी कि लोगोंका जल्दी-से-जल्दी कैसे कल्याण हो। एक प्रवचनमें उन्होंने कहा था–

'आप ऊँचे बन जायँ, महात्मा बन जायँ, संसारमें आपकी कीर्ति हो जाय, आपके दर्शनसे लोगोंका कल्याण हो जाय—ऐसा मैं चाहता हूँ, इसीलिये ये बातें कहता हूँ।' (1.2.99, प्रात: 9, गाँधीधाम)।

मनुष्यके कल्याणमें खास बाधा है–अपने शरीरसे मोह अर्थात् शरीरको 'मैं' और 'मेरा' मानना है। इस बाधाको दूर करनेके लिये श्रीस्वामीजी महाराजने आजीवन व्यक्तिपूजाका निषेध किया और लोगोंको जड़तासे हटाकर भगवान्‌में लगानेका प्रयत्न किया।

यहाँ श्रीस्वामीजी महाराजके ऐसे प्रवचनों आदिका संकलन दिया जा रहा है, जो साधकमात्रके लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद हैं।

★★★ ★★★ ★★★

सन् 1980 की बात है। जोधपुरके किसी व्यक्तिने छिपकर अपने कैमरे से श्रीस्वामीजी महाराजका चित्र खींच लिया। उसने उस चित्रकी कई प्रतियाँ बना दीं और उनका प्रचार करने लगा। प्रचार इतना बढ़ गया कि श्रीस्वामीजी महाराजका वह चित्र बड़े आकारमें जोधपुरके 'गंगश्यामजीके मन्दिर' में लगा दिया गया। जब श्रीस्वामीजी महाराज वृन्दावनमें विराज रहे थे, तब उन्हें इस बातकी सूचना मिली। सूचना मिलनेपर श्रीस्वामीजी महाराज को बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने तत्काल इससे जुड़े व्यक्तियोंको कड़े शब्दोंमें एक पत्र लिखवाकर भेजा—

सम्मान्य....

सप्रेम राम-राज।

परमपूज्य श्रीस्वामीजी महाराजने जोधपुरके मन्दिरमें अपना चित्र लगाये जानेकी बातपर जो विचार प्रकट किये हैं, वे उनकी प्रेरणासे आपको लिखे जा रहे हैं—

'जोधपुरके गंगश्यामजीके मन्दिरमें मेरे हाड़-मांसके अपवित्र शरीरका चित्र लगानेकी बातसे मेरा हृदय जल रहा है! समझमें नहीं आता कि आपलोग मेरा हृदय क्यों चला रहे हैं? मैंने किसीको दु:ख नहीं दिया, फिर

मेरे अन्तरको चोट क्यों पहुँचा रहे हैं? मुझे इतना दु:ख क्यों दे रहे हैं? सेठजी और भाईजीके जानेका भी मुझे इतना दु:ख नहीं हुआ, जितना दु:ख मन्दिरमें मेरा चित्र लगाकर आपलोग मुझे दे रहे हैं। मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? एक साधुपर भी आपलोगोंको दया नहीं आती! कितने निर्दय कसाई हो! मुझे निर्बलकी इस प्रकार निर्मम हत्या मत करो। इस भयंकर पापसे बचो। मनुष्यकी हत्या करनेकी अपेक्षा उसके सिद्धान्तकी हत्या करना बहुत भयंकर पाप है। अच्छे-अच्छे पुरुषोंने अपने प्राण छोड़ दिये, पर सिद्धान्त नहीं छोड़ा।'

'जिसने छिपकर मेरा चित्र लिया अथवा बनाया है, उसने महान् घातक पाप किया है। चित्र बनाकर और उसकी बिक्रीसे रुपये कमाकर नरकोंकी तैयारी क्यों कर रहे हो? नरकोंकी टोली क्यों बना रहे हो? आपलोगोंकी क्या दशा होगी? *'मुँह से खाओगे, फरनी से निकलेगा', 'करहिं मोहबस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥'* **और तो मेरे पास कोई बल नहीं है। अधिक हुआ तो जोधपुर नहीं आऊँगा।'**

'मनुष्यका शरीर तो हाड़-मांसमय, अपवित्र है। उसे भोजन कराओ तो मल बनकर निकलता है। गंगाजल पिलाओ तो मूत्र बनकर निकलता है। यह मल-मूत्र बनानेकी फैक्टरी ही तो है। भगवान्‌के मन्दिरमें ऐसे हाड़-मांसके अपवित्र पुतलेका चित्र रखना महान् अपराध है। शीघ्रातिशीघ्र चित्र हटाकर, उसे नष्ट करके इस भयंकर पापसे बचो। अन्यथा आपलोग अनिष्टसे बच नहीं सकते। इससे आपलोगोंका कैसे कल्याण हो सकता है! मुझे जूते भले ही मार लो, कैद भले ही करवा दो, पर मेरा चित्र मन्दिरसे तुरन्त हटवा दो। मेरे सिद्धान्तकी हत्या मत करो।

शेष भगवत्कृपा।

दिनांक 15.3.1980

आपका

....

....

इसके साथ ही श्रीस्वामीजी महाराजने 'आयुक्त, देवस्थान विभाग, जोधपुर' के नाम भी एक पत्र भेजा—

॥श्री हरि:॥

सम्मान्य महोदय,

सप्रेम राम-राम,

निवेदन है कि जोधपुरके गंगश्यामजीके मन्दिरमें परमपूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका चित्र लगाया गया है, जो पूज्यश्री स्वामीजी महाराजकी इच्छाके सर्वथा विरुद्ध है। भगवान्‌के मन्दिरमें हाड़-मांसके अपवित्र पुतलेका चित्र लगाना अपराध है एवं पूज्यश्री स्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध है। अत: उनकी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि शीघ्र ही मन्दिरसे उनका चित्र हटवाकर उनके सिद्धान्तकी रक्षा की जाय। उनके सिद्धान्तका हनन करके उन्हें दु:ख न पहुँचाया जाय।

शेष भगवत्कृपा।

दिनांक 15.3.1980

आपका

....

....

दूसरे दिन (16.3.1980 को) प्रात: श्रीस्वामीजी महाराजने मुझसे कहा कि '**मेरेको साफ दीखता है कि वे लोग नरकोंमें जा रहे हैं! दो-तीन दिनसे जब मैं नित्यकर्ममें बैठता हूँ तो बड़ी जोरसे हलचल होती है। इससे ऐसा लगता है कि भगवान्‌की इच्छा है कि मैं जोधपुर जाऊँ। एक बार वहाँ जाकर मनकी निकाल जाऊँ!** शीघ्र ही श्रीस्वामीजी महाराजका जोधपुर जानेका कार्यक्रम बन गया। दिनांक 20.3.1980 को श्रीस्वामीज महाराज जोधपुर पधारे। वहाँ जाकर श्रीस्वामीजी महाराजने सत्संगकी घोषणा करवायी। हजारों लोग श्रीस्वामीजी महाराजका प्रवचन सुनने पहुँचे। श्रीस्वामीजी महाराजने प्रवचनमें अपना चित्र रखनेवालोंकी घोर भर्त्सना की और कहा कि जिसने भी मेरा चित्र रखा है, उसे वह यहाँ लाकर दे। लगभग अस्सीसे अधिक चित्र जमा हो गये। उन सब चित्रोंको इकट्‌ठा करके उसमें आग लगा दी गयी!

श्रीस्वामीजी महाराजने जोधपुरमें जो मार्मिक प्रवचन दिये, उनमेंसे दो प्रवचन यहाँ दिये जाते हैं—

(1)

सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म परमात्माको और सन्त-महात्माओंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके सामने अपने दु:खकी बात कहनेके लिये आया हूँ। वह आप मानें अथवा न मानें, यह मेरे हाथकी बात नहीं। परन्तु मैं अपना दु:ख हल्का का लूँ, इसलिये आया हूँ। कम-से-कम आप ध्यान देकर सुनें।

मैं बचपनसे ही साधु-आश्रममें हूँ। कई तरहकी घटनाएँ मेरे साथ घटी हैं। मेरे को कब-कब दु:ख हुआ है, कैसे-कैसे दु:ख हुआ।-इसपर मैंने विचार किया है। विचार करनेपर मेरे सामने ऐसे चार अवसर आये, जिनमें मेरेको विशेष दु:ख हुआ। परन्तु उन चारोंकी अपेक्षा भी अभी वृन्दावनमें मैंने जो बात सुनी, उस बातसे मेरेको ज्यादा दु:ख हुआ! यह बात मैं जानता हूँ, मानता हूँ, कहता हूँ, कहता हूँ, सुनता हूँ, पढ़ता हूँ और विचार भी करता हूँ कि आदमीको दु:ख नहीं होना चाहिये। दु:ख दूर करनेकी क्या-क्या बातें हैं, ऐसी बहुत-सी बातें भी मैंने पढ़ी और समझी हैं तथा उनको काममें भी लगाया है। उन बातोंसे किंचिन्मात्र भी दु:ख नहीं रह सकता, दु:ख मिट सकता है और मिटा भी है। इतना माननेपर भी अबकी बार मेरेको घोर दु:ख हुआ है! उसका क्या कारण है? वह सब आपलोगोंके सामने कहनेका मन नहीं करता। परन्तु थोड़ी-सी बात मैं कह दूँ।

मेरा दु:ख मेरा व्यक्तिगत नहीं है। मेरी क्या दशा होगी, क्या गति होगी-इस बातको लेकर बिल्कुल दु:ख नहीं है। परन्तु हमारे भाइयोंकी, बहनोंकी क्या दशा होगी-इस बातको लेकर दु:ख है! उस दु:खको, जलनको आप कृपा करके मिटाओ तो मिट सकती है। इसीलिये मैं अपना कर्तव्य समझकर यहाँ आया हूँ कि आपलोगोंके सामने अपने मनकी भाप निकाल दूँ, अपने मनका दु:ख प्रकट कर दूँ। नीतिमें ऐसा आता है कि किसीके मनमें दु:ख हो तो उसको अपने पूज्यनके सामने अथवा अपनी प्रिय स्त्रीके सामने अथवा विश्वासपात्र सेवकके सामने कह दे और मन हल्का कर ले। आपलोग हमारे चित्र हैं, स्नेह रखनेवाले हैं, इसलिये आपलोगोंको कहकर मैं अपना मन हल्का कर लूँ!

जोधपुर मैं संवत् 1972 (सन् 1915)-से जानता हूँ। उस समय चातुर्मासमें मैं यहाँ था। परन्तु आपलोगोंके सामने इतना विशेषरूपसे सम्पर्कमें नहीं आया। संवत् 2008 (सन् 1951)-में मैंने यहाँ पहली बार चातुर्मास किया। उसके

बाद जोधपुरसे मेरा विशेष सम्पर्क रहा है। आप यह जानते हैं कि मैं चरण नहीं छुआता। **व्याख्यान देते हुए ऊँचा आसन ग्रहण करनेमें भी मेरेको संकोच आता है।** 'न्यातके नौहरे' (जोधपुर)-में व्याख्यान देते समय जब पाटा देकर मेरेको ऊपर बैठाते हो तो किसी-न-किसीको अपने पास ऊपर बैठाता, चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हो! अकेले ऊपर बैठनेमें मेरेको शर्म आती है। मैं शरीरको पुजवाना नहीं चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मैं विरक्त हूँ, त्यागी हूँ; परन्तु शरीरको पुजवाना मैं अच्छा नहीं समझता, खराब समझता हूँ। इससे जीवका कल्याण नहीं होता।

मैं जो ये बातें बता रहा हूँ, ये केवल मेरी व्यक्तिगत बातें हैं। मेरा दूसरोंपर बिलकुल आक्षेप नहीं है। आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे आदमीको सामने न रखें। मेरी बात मेरेतक ही सीमित रखें कि यह अपनी बात कह रहा है, अपना दु:ख दूर करना चाहता है; इसके ऊपर हम दया करें। अत: मेरे ऊपर आप दया करें, बाकी आप जैसा करें, आपकी मरजी! मैं अपनी व्यक्तिगत बात कहता हूँ। मैंने यह सिद्धान्त मान रखा है कि शरीर पूजनीय नहीं है। रामायणमें आया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, किष्किन्धा. 19। 2)

इस शरीरको अति अधम बताया गया है। अधम क्यों बताया है? इसकी ज्यादा व्याख्या तो मैं नहीं करता, पर थोड़ी करता हूँ। यह शरीर क्या है-इसको आप देखें। इसको बढ़िया-से-बढ़िया भोजन, भगवान्‌का प्रसाद दे दो, यह उसे विष्ठा बना देगा! और गंगाजल-जैसा बढ़िया जल पिला दो, यह उसे मूत्र बना देगा! तो **यह शरीर टट्टी-पेशाब बनानेकी एक मशीन है, एक फैक्टरी है!** जबतक इस शरीरमें प्राण हैं, तबतक इससे मल-मूत्र बनते हैं। मर जानेके बाद, चाहे माता-पिताका शरीर हो, चाहे गुरुका शरीर हो, उसको छूनेके बाद कपड़ोंसहित स्नान करना पड़ता है! इतना मलिन है यह! ऐसे शरीरकी पूजा करनी ठीक है क्या?

आदर-निरादर, मान-अपमान आदिकी इच्छा 'शरीर' को लेकर होती है और जीवित-अवस्थामें निन्दा-स्तुति, यश, प्रशंसा आदिकी इच्छा तथा मरनेके बाद कीर्तिकी इच्छा 'नाम' को लेकर होती है। **शरीर और नाम दोनों ही नाशवान् हैं। इनके मोहमें फँसा हुआ आदमी अपना कल्याण कभी नहीं कर सकता-यह शास्त्रोंका, सन्त-महात्माओंका सिद्धान्त है।** कारण कि शरीर (रूप) और नाम ही संससार है। इससे ही हमें मुक्ति पाना है, छुटकारा पाना है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि कम-से-कम अपने शरीरका पूजन न करवाये, शरीरका उपासक न बने। यह शरीर ही पूजनीय है-यह असुरराज विरोचनका मत है (छान्दोग्योपनिषद् 8। 8। 4)। अत: शरीरकी उपासना करना राक्षसोंका मत है, सज्जनोंका मत नहीं है, साधुओंका मत तो है ही नहीं। सिद्ध तो मान ही नहीं सकते; क्योंकि वे गुणातीत होते हैं। वे शरीरके मोहमें नहीं फँसते।

शरीरमें तो प्राण रहते हैं, पर शरीरका चित्र निष्प्राण होता है, मुर्दा होता है। उस चित्रको घरमें रखना, उसका आदर करना, उसकी पूजा करना कहाँतक उचित है? आप जरा विचार करें। ये बातें मैं मेरे लिये कहता हूँ, औरोंके लिये नहीं। मैं इस विषयका विशेष विवेचन नहीं करना चाहता। मेरेको संकोच होता हैं परन्तु आफत आ गयी, इसलिये कहना पड़ता है। आप बहुत बड़ अन्याय करते हैं! कम-से-कम, कम-से-कम इससे मेरेको दु:ख होता है! मेरी उम्रमें इतना दु:ख पहले हुआ हो, हृदयमें इतनी जलन हुई हो, मुझे याद नहीं! इसका पाप उसको लगेगा, जिसने मेरा चित्र उतारा है, जिसने इसके लिये प्रेरणा की है। दूसरा, उसको पाप लगेगा, जो इस चित्रका प्रचार कर रहे हैं, रुपया ले-लेकर बेच रहे

हैं।

एक वाक्य आता है–‘**प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा**’ (नारदपरिव्राजक.5) ‘प्रतिष्ठा सूअरकी विष्ठाके समान है’। सूअर मनुष्योंकी विष्ठा खाता है, इसलिये सूअरकी विष्ठा ‘विष्ठाकी भी विष्ठा’ हुई! शरीर विष्ठा पैदा करनेकी फैक्टरी है, इसलिये शरीरका चित्र विष्ठाकी भी विष्ठा है! जड़से भी जड़ है! महान् नीच चीज है! उस चित्रका पूजन करके आप भला चाहते हैं? उसमें आपका भला नहीं है। इस बातकी मेरे भीतर जलन है! इसलिये आप कृपा करें, जिनके पास मेरे चित्र हों, वे सब चित्र लाकर मेरेको दे दें। मैं रुपये रखनेवालेसे प्रार्थना करके उनका रुपया दिला दूँगा।

मैंने विचार किया कि सभामें कहूँगा कि भाई, मैंने आपका क्या कसूर किया है, आपको मैंने क्या दु:ख दिया है, मैंने कौन-सा अपराध किया है, जिसका दण्ड मेरेको दिया जा रहा है? अगर मेरे द्वारा आपका कोई कसूर हुआ हो तो मैं इतने आदमियोंके सामने दण्डवत् करके माफी माँग सकता हूँ! आपके चरण छूकर नमस्कार कर सकता हूँ! ऐसा करनेमें मेरेको शर्म नहीं आती। परन्तु मेरी जानकारीमें मैंने कोई अपराध किया नहीं। भूलमें हो गया हो तो माफी माँग लेता हूँ। आप सब भाई-बहन मेरेको माफी दे दें। परन्तु मेरेको ऐसा दु:ख न दें, इतनी कृपा आप करें।

मैं मानता हूँ और जानता भी हूँ कि आप सेवा करना चाहते हैं, आपका भाव सेवा करनेका है। आपमें दिखावटीपन नहीं है। पर आप भूलसे यह अपराध कर रहे हैं। एक ‘पाप’ होता है, एक ‘अपराध’ होता है। दूसरेकी हत्या करना, चोरी करना आदि ‘पाप’ कहलाते हैं, और किसीके अन्त:करणको ठेस पहुँचाना, दु:ख देना ‘अपराध’ कहलाता है। **‘पाप’ तो दण्ड भोगनेसे, नरक भोगनेसे, चौरासी लाख योनियाँ भोगनेसे दूर हो जायगा, पर ‘अपराध’ दूर होना मुश्किल है!** अपराध दण्डसे दूर नहीं होता, प्रत्युत जिसका अपराध किया है, वही माफ करे तो दूर हो सकता है। मैंने सन्त-महात्माओंसे सुना है कि **पापीकी मुक्ति तो हो सकती है, पर जबतक कर्जा देनेवाला माफ न कर दे, तबतक कर्जदारकी मुक्ति नहीं हो सकती।** इसलिये मैंने बहुत बार कहा है कि संसारमें माँके समान कोई भी हमारा हित करनेवाला नहीं है। माँ जन्म देती है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा काम माँ करती है। इसलिये सबसे पहले माँ पूजनीय होती है। उपनिषदोंमें पढ़ाई पूरी करनेके बाद गुरु शिष्योंको श्ज्ञिखा देते हुए सबसे पहले माँका नाम लेते हैं–

‘मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव’।

(तैत्तिरीयोपनिषद् 1। 11)

‘तुम मातामें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, पितामें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, आचार्यमें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, अतिथिमें देवबुद्धि रखनेवाले बनो।’

उस माँका कितना अपराध हमने किया है, इसकी गिनती नहीं है! माँकी सेवा करके उसका सब-का-सब कर्जा हम उतार दें, यह असम्भव है। परन्तु माँकी प्रसन्नता ले लें तो सब कर्जा माफ हो जाता है। कितनी सुगम बात है! माँके हाथका बनाया हुआ भोजन कर लो, उसके चरणोंमें गिर जाओ, उसका कहना मान लो तो इतनेमें माँ प्रसन्न हो जायगी, आशीर्वाद देने लगेगी। इतनेसे मातृऋण चुक जाता है, नहीं तो जहाँ जाओ, माँका ऋण रहेगा। अत: अपराधका दण्ड बड़ा होता है।

मेरे मनमें यह बात आयी कि लोगोंने भूलसे यह अपराध किया है, दु:ख देनेके लिये नहीं किया है। कोई मेरेको दु:ख देना चाहता है-ऐसा मेरी दृष्टिमें नहीं दीखता। कोई दु:ख देना चाहता ह तो तो मेरेको पता भी नहीं है। मैं अपनी दृष्टिकी बात ही कह सकता हूँ। शरीरका चित्र लेकर आप लाभ लेना चाहते हैं, यह कितनी बुरी बात है! इस विषयमें

एक व्यक्तिकी बात विशेषतासे सुनी है, दूसरों की इतनी नहीं सुनी है। वह आज यहाँ नहीं है, ऐसा मैंने सुना है। दो बड़े अपराधी हैं-एक तो वह, जिसने छिपकर मेरा चित्र उतारा, और दूसरा वह, जिसने उसका प्रचार किया। **भगवान्‌का मन्दिर दिव्य देश माना जाता है। उस दिव्य देशमें मैला पैदा करनेकी मशीन (शरीर)-का चित्र रख देना कितनी बुरी बात है!** मेरेको बड़ा दु:ख हुआ कि भाईलोग यह क्या कर रहे हैं! भाई-बहन भगवान्‌के दर्शन करने मन्दिरमें जायँ और उनके सामने मैलेकी मशीनका चित्र रख दिया जाय! क्या उन लोगोंने सोचा है कि क्या दशा होगी? उनकी इस बातको लेकर मेरेको जलन होती है! अब मैं कहता हूँ कि जिनके भी पास चित्र हों, वे सब लाकर हमारेको दे दें और अपना-अपना पैसा ले लें। आपका नुकसान नहीं होना चाहिये। फिर आगेसे ऐसी चेष्टा बिल्कुल न करें। चित्रको लेकर आप पैसा पैदा करते हैं! कितने दु:खकी बात है!

पैसोंके विषयमें एक बात याद आ गयी। आपको समझा दूँ, यह मेरी शक्तिसे बाहरकी बात है। मैंने मान रखा है, पढ़ रखा है, सुन रखा है कि संसारमें रद्दी-से-रद्दी चीज पैसा है। ऐसी रद्दी चीज कोई नहीं है। मैला भी, कूड़ा-करकट भी, विष्ठा भी, पेशाब भी इतनी खराब चीज नहीं है। **वह पैसा जिनके मनमें ऊँचा स्थान पा गया, उसका उद्धार होना मुश्किल है!** गीताने कहा है कि जो भोग तथा ऐश्वर्यमें आसक्त हैं, उन मनुष्योंकी परमात्मामें एक निश्चयवाली बुद्धि नहीं होती—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता 2। 44)

तात्पर्य है कि जिनका मन सुखभोगमें तथा धनादि पदार्थोंका संग्रह करनेमें ही लगा हुआ है, वे 'मेरेको परमात्माका ही दर्शन करना है, परमात्माको ही प्राप्त करना है'-ऐसा दृढ़ निश्चय भी नहीं कर सकते। उस पैसोंके मोहमें आकर आप झूठ, कपट, बेईमानी, छल, अभक्ष्य-भक्षण, ब्लैक-मार्किट, इन्कम-टैक्सकी चोरी, सेल्स-टैक्स की चोरी आदि कितने-कितने अनर्थ करते हो! यह मैं आपपर दोषारोपण करने के लिये नहीं कह रहा हूँ, प्रत्युत आप निर्दोष हो जायँ, इस भावसे कहता हूँ। मैं सरलातसे आपलोगोंके सामने प्रार्थना करता हूँ, विनती करता हूँ। मैं गुरु बनकर उपदेश नहीं देता हूँ, प्रत्युत सलाह देता हूँ। आप मानेंगे तो बड़ी कृपा होगी!

एक विधि-वाक्य होता है, एक निषेध-वाक्य होता है। ऐसा करो, जप करो, ध्यान करो, दान करो, तीर्थ करो, व्रत करो-यह विधि-वाक्य है। ऐसा मत करो-यह निषेध-वाक्य है। विधि-वाक्य नहीं मानेंगे तो हम उससे होनेवाले लाभसे वंचित रहे जायँगे। परन्तु निषेध-वाक्य नहीं मानेंगे तो हमें दण्ड होगा। इसलिये माता, पिता, गुरु आदि जिस बातका निषेध करें, उसको नहीं करना चाहिये। इस विषयमें मैंने अध्ययन किया है, एकान्तमें बैठकर विचार किया है, खोज की है कि **निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग कर दें तो कल्याण हो जायगा। साधन करते हुए भी अपनी अवस्था ऊँची नहीं दीखती-इसके मुख्य कारणोंमें एक मुख्य कारण यह भी है कि निषिद्ध आचरणोंका त्याग नहीं करते।** विहित और निषिद्ध दोनों आचरण करते हैं। ये दोनों आचरण किसके द्वारा नहीं होते? अर्थात् सबके द्वारा होते हैं। कसाई-से-कसाई, डाकू-से-डाकू भी विहित आचरण न करे-ऐसी बात नहीं है। कसाईके हृदयमें भी दया होती है। वह अपने बाल-बच्चोंकी हत्या नहीं करता, प्रत्युत उनका पालन करता है। तात्पर्य है कि दुर्गुण-दुराचारोंका तो सर्वथा त्याग हो सकता है, पर सद्‌गुण-सदाचारोंका सर्वथा त्याग हो ही नहीं सकता। सद्‌गुण-सदाचारोंसे उतना लाभ नहीं

होगा, जितना दुर्गुण-दुराचारोंके त्यागसे होगा। पापोंके, अपराधके, अन्यायके त्यागमें बड़ा भारी बल है।

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुक्ख।

तुलसी पातक हरत है, देखत उसका मुक्ख॥

जो तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, बुद्धिसे, अधिकारसे, योग्यतासे दूसरेको दु:ख नहीं देता, वह इतना पवित्र हो जाता है कि उसका दर्शन करनेसे पाप दूर हो जाते हैं! यह बात जल्दी समझमें नहीं आती! बहुत-से भाई-बहनों ने समझ रखा है कि भजन-ध्यान करनेसे बड़ा लाभ होता है, और यह सच्ची बात है, मैं झूठ नहीं कहता हूँ। परन्तु पापोंसे, अन्यायसे, दूसरोंके मनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो पाप लगता है, उससे छुटकारा नहीं होता। इसलिये ऐसा करनेवाले ऊँची स्थितिका प्रत्यक्षमें अनुभव कर सकते हैं, न करेंगे।

जिस बातका निषेध किया जाय, उसको बिल्कुल मत करो। करनेमें तो जोर आता है, पर न करनेमें क्या जोर आता है? नही करेंगे-इसमें न पैसोंकी जरूरत है, न बलकी जरूरत है, न विद्याकी जरूरत है, न योग्यताकी जरूरत है। इस तरफ आप ध्यान दें। शायद आपके मनमें यह बात हो कि हम स्वामीजीका दर्शन करें। अगर चित्र न हो तो किसका दर्शन करें? मैं कहता हूँ कि ऐसे दर्शनसे आपको लोभ नहीं होगा। अगर दर्शन न करें तो आपको क्या बाधा होती है? दर्शन करना हो तो सूर्य भगवान्‌का दर्शन करें। इससे अन्त:करण पवित्र होगा। सूर्यका दर्शन करनेसे नीरोगता आती है-ऐसा शास्त्र भी कहते हैं और प्राकृत चिकित्सावाले भी कहते हैं। प्रत्यक्षमें सूर्यके समान न कोई हुआ है, न कोई है। भगवान्‌का जो ऐश्‍वर्य, विभूति प्रकटमें है, उनमें सूर्य सबसे बढ़कर है। कई लोग सूर्यका दर्शन किये बिना भोजन नहीं करते। यदि दर्शन नहीं होते तो भूखे रहते हैं और दूसरे दिन दर्शन करके भोजन करते हैं।

अपने माता-पिताकी, गुरुजनोंकी सेवा करो। **उनकी सेवा करो नहीं, उनका कहना मानो नहीं, कोरा चित्र (फोटो) पासमें रखो तो यह उनका महान अपमान, तिरस्कार है!** चित्र रखनेसे माता-पिताको क्या लाभ होगा? उनकी आज्ञाका पालन करनेके समान दूसरी कोई सेवा नहीं है-**'अग्या सम न सुसाहिब सेवा'** (मानस, अयोध्या. 301। 2)। वास्तवमें उनके कहनेके अनुसार अपना जीवन बनाओ। चित्र रखना हो तो भगवान्‌का चित्र रखो और उसके दर्शन करो; क्योंकि सर्वव्यापी भगवान् उस चित्रमें भी परिपूर्ण हैं, विद्यमान हैं। भगवान् सब जगह हैं तो चित्रमें, मूर्तिमें भी हैं।

सन्त-महात्माओंने अपने सिद्धान्तके आगे शरीरको कुछ नहीं समझा। ईसाने क्रॉसपर चढ़ना स्वीकार कर लिया, पर अपने सिद्धान्तका नाश नहीं होने दिया। मंसूरने सूलीपर चढ़ना स्वीकार कर लिया, पर अपने सिद्धान्तसे टस-से-मस नहीं हुआ। कारण कि **सन्तोंको अपना सिद्धान्त जितना प्यारा होता है, उतने अपने प्राण भी प्यारे नहीं होते।** जिस सिद्धान्तसे दुनियाका कल्याण होता है, उसकी हत्या करना कितना बढ़ा पाप है! मनुष्यकी हत्यासे बढ़ा पाप है! जीवोंका कल्याण सिद्धान्तसे होता है, शरीरसे नहीं। शरीरके द्वारा सिद्धान्तका विवेचन किया जा सकता है। विवेचनसे विवेक मुख्य होता है। विवेक बुद्धिसे भी परेकी चीज है। विवेक बुद्धिमें आता है, उत्पन्न नहीं होता। उस विवेकको लेकर ही मनुष्यशरीरकी महिमा है।

विवेक कर्मोंका फल नहीं है। अगर विवेकको शुभ कर्मोंका फल मानें तो वे शुभ कर्म बिना विवेकके कैसे हुए? शुभ कर्मोंसे पहले विवेककी आवश्यकता है। इसलिये विवेक कर्मजन्य, उद्योगजन्य अथवा बुद्धिजन्य नहीं है। विवेक केवल भगवत्कृपासे प्राप्त होता है। उस विवेकके द्वारा सार-असार, नित्य-अनित्य, सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्य

आदिका ज्ञान होता है। जैसे बिजली बल्बमें आती है, ऐसे ही विवेक बुद्धिमें आता है। गीतामें प्रकृति और पुरुषको अनादि कहा गया है—**'प्रकृतिं पुरुष चैव विद्ध्यनादी उभावपि'** (गीता 13। 19)। जैसे प्रकृति और पुरुष अनादि हैं, ऐसे ही उनके भेदका ज्ञान अर्थात् विवेक भी अनादि है। वह विवेक भगवान्‌ने मनुष्यमात्रको दिया है। पशु, पक्षी, लता, वृक्ष आदिमें भी विवेक है। बेल वृक्ष, दीवार आदिकी तरफ जहाँ जगह मिलती है, उधर चली जाती है। यह उनमें विवेक है। पशु अपने लिये हानिकारक वस्तुओंका नहीं खाता। ऊँट कितना भी भूखा हो, आक नहीं खायेगा। पर बकरी आक खा लेगी। इस प्रकार उनमें शरीर-निर्वाहका विवेक तो है, पर उनमें वह विवेक नहीं है, जिससे वे अपना और दूसरेका कल्याण कर सकें। मनुष्यको भगवान्‌ने इतना विलक्षण विवेक दिया है कि उस विवेकको काममें लेकर वह अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले भगवान्‌को भी नाच नचा सकता है—***'ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं'!*** भगवान्‌को भी अपने वशमें कर सकता है—***'मैं तो हूँ भगतन का दास, भगत मेरे मुकुटमणि'!*** इतनी विलक्षण शक्ति भगवान्‌ने मनुष्यको दी है! परन्तु उस विवेक-शक्तिका दुरुपयोग करके मनुष्य निषिद्ध कर्मोंमें लगकर अपना महान् पतन कर लेता है! कितनी खराब बात है! रामायणमें दुष्ट व्यक्तिकी बात बतायी—

बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों।। (मानस, उत्तर० 39। 3)

बिना कारण सबसे वैर करना और जो भलाई करता है, उसके साथ भी बुराई करना—यह दुष्ट-शिरोमणिके लक्षण हैं!

आप विचार करें, विवेक यह नहीं कहता कि शरीर बढ़िया है, उसका चित्र बढ़िया है अथवा उसकी पूजा बढ़िया है। जो लोग मूर्तिपूजाका निषेध करते हैं, वे समझते नहीं। जो शरीरको सजाते हैं, मकानेको सजाते हैं, सुन्दर-सुन्दर शृंगार करते हैं, वे मूर्तिपूजा नहीं करते, प्रत्युत भगवान्‌की पूजा करते हैं। वे ये नहीं कहते कि हे पथर-देव! तुम बड़े अच्छे हो, तुम अमुक पहाड़में से निकले हो, तुम्हें अमुक कारीगरने रचा है, आदि। वहाँ तो भगवान्‌की स्तुति करते हैं। मन्दिरमें पूजन करनेवाले सब भगवान्‌का पूजन करनेवाले हैं, मूर्तिपूजा करनेवाले नहीं हैं।

भगवान्‌के चित्रका पूजन करना अच्छा है; क्योंकि भगवान् उसमें मौजूद हैं। भगवान् खम्भेसे प्रकट हो गये तो क्या मूर्तिसे प्रकट नहीं हो सकते? इसलिये मन्दिरमें जाकर भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करते हैं, जप-कीर्तन करते हैं, परिक्रमा करते हैं, प्रणाम करते हैं, दण्डवत् करते हैं। वह कितना पवित्र दिव्य देश है! भागवत्में मन्दिरको सत्त्वगुणसे भी ऊँचा निर्गुण-स्थान कहा गया है—**'मन्निकेतं तु निर्गुणम्'** (श्रीमद्भा० 11। 25। 25)। वहाँ जाकर हम भगवान्‌की पूजा करते हैं। उस पूजाको भगवान् अपनी पूजा मान लेते हैं। क्यों मान लेते हैं? यदि भगवान् पहले दर्शन दे देते तो हम भगवान्‌का ही ध्यान करते, उनके चित्र अथवा मूर्तिका नहीं। वे दर्शन नहीं देते तो हम जिसको भगवान् मानकर ध्यान करते हैं, उसे भगवान् अपना मान लेते हैं। आप भगवान्‌को साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण आदि कुछ भी मानो, इसमें छूट दी हुई है। इसमें हमारे लिये बड़ी सहूलियत है! कारण कि भगवान् दर्शन दे दें और फिर उनका ध्यान करनेमें हमारेसे कोई चूक हो जाय तो कान पकड़कर गलती माननी पड़े! भगवान् दर्शन देते नहीं तो फिर हम जो ध्यान करें, उसको भगवान् अपना मान लेते हैं। बच्चा माँको किसी नामसे पुकारे, माँ उसको अपना मान लेती है।

सन्तोंका पूजन न करके उनकी बात माननी चाहिये। एक सन्तने अपने शिष्यसे कहा कि हमारी कमर दुखती है, इसपर लात दे दो। शिष्य बोला कि राम-राम-राम-राम, आपके ऊपर पैर कैसे रखूँ? सन्तने कहा कि मेरे ऊपर पैर रखनेमें तो लज्जा करता है, पर जबानपर लात मारता है! इसलिये आपलोगोंसे निवेदन है कि आप ऐसी भूल न करें। मेरे ऊपर कृपा रखें। मेरे पास कोई जोर तो है नहीं! मैं तो आपलोगोंका एक भिक्षुक हूँ! मेरे पास तो इतनी बात है कि

आपलोगोंको बातें सुना सकता हूँ। मेरेको जो ठीक लगता है, वही सुनाता हूँ। कोई आदमी अपनी बात सुनायेगा तो बढ़िया बात ही सुनायेगा। घटिया बात सुनाकर अपनी बेइज्जती क्यों करायेगा? इसलिये मैं जो बातें सिद्धान्तसे बढ़िया मानता हूँ, वही सुनाता हूँ। एक जगह मेरेको कहा कि आप वहाँपर आ जाओ। मैंने कहा कि अभी मेरा वहाँ आना नहीं बन सकता। तो वे बोले कि आप नहीं आओगे तो हमारा कल्याण कौन करेगा? मैंने कहा कि यह तो तब कह सकते हो, जब मेरे जन्मके बाद कल्याण होना शुरू हुआ हो और मेरे मरनेके बाद कल्याण होना बन्द हो जायगा। परन्तु जब मैं पैदा नहीं हुआ था तब भी कल्याण होता था और जब मर जाऊँगा, तब भी कल्याण होगा, और अभी कल्याण हो ही रहा है। यह तो सदासे होता आया है।

श्रोता—भगवान्‌ने कहा कि सन्तोंको मुझसे भी अधिक करके मानो—**'मोतें संत अधिक करि लेखा'** (मानस, अरण्य० 36। 2)!

स्वामीजी—परन्तु वहाँ सन्तके चित्रकी अथवा उसके पूजनकी बात आयी हो तो बताओ! सन्तकी बात तो मानेंगे नहीं, पर उनके सिद्धान्तमें लात मारेंगे! यह सन्तका आदर हुआ या निरादा? यह आदर नहीं, घोर अनादर है!

मैं जीते हुए शरीरकी भी किसीसे पूजा नहीं कराता, इस बातको आप वर्षोंसे जानते हैं। फिर भी उस शरीरका चित्र उतारकर पूजा करते हैं, जो विष्ठाकी भी विष्ठा है, जड़ताकी भी जड़ता है! चित्र बेच-बेचकर पैसा ईकट्‌ठा करना मांसकी बिक्रीसे भी नीचा है। ऐसे आदमियोंके ऊपर दया आनी चाहिये!

यहाँ रायपुरमें एक सन्त हुए—मुरलीरामजी महाराज। बड़े अच्छे महात्मा हुए। उन्होंने कहा था कि जब मैं मर जाऊँगा, मेरा चबुतरा बना दिया। उनका नामोनिशान क्या, वंश नष्ट हो गया! उन्होंने सद्‌भावनासे ही चबुतरा बनवाया, दुर्भावनासे तो बनाया नहीं, पर सन्तके विपरीत काम करनेका यह परिणाम हुआ। दरियाजी महाराजके एक शिष्य पूर्णनाथजी थे। पूर्णनाथजीका शरीर शान्त हो गया तो उनका चबुतरा बनाया गया। दरियाजी महाराज वहाँ गये तो चबूतरेको देखकर बोले कि पूर्ण तो पूर्णताको प्राप्त हो गया, फिर यहाँ पत्थर क्यों इकट्‌ठे किये हैं? ऐसी बात मैंने सन्तोंसे सुनी है।

एक बात और याद आ गयी है! मैंने यह बात कह दी है और (वसीयतमें) लिखवा भी दी है कि जब यह शरीर मर जाय, तब इसका चित्र उतारना, जीवनी लिखना आदि बिल्कुल मत करना। मीठना भोजन बिल्कुल मत करना, प्रत्युत जैसे मैं अभी भिक्षासे निर्वाह करता हूँ, ऐसे भिक्षा ले आओ, रूखी-सूखी रोटी, साग-दाल आदि जो मिले, वह पाओ और बैठकर राम-राम करो। शोक बिल्कुल मत करो। नाम-जप करो, कीर्तन करो, गीताका पाठ करो, इसमें मेरी सम्मति है। रामनिवासजीने सलाह दी कि लोग मानते नहीं, उदाहरण हमारे सामने हैं, इसलिये वसीयतनामा लिखवा दो, तो मैंने लिखवा दिया। शरीर तो एक दिन चला जायगा। इतने आदमी चले जायँ और मैं एक रह जाऊँ, यह बात तो है नहीं। आप सबसे कहना है कि मेरे सिद्धान्तकी हत्या मत करना। मैंने जीते-जी कह दिया है, मरनेके बाद कौन कहे! जीते-जी भी श्राद्ध किया जाता है!

श्रोता— आप ऐसी बात हमें कहते हैं, आपमें दया नहीं है!

स्वामीजी— दया है, तभी तो कहता हूँ। दया नहीं होती तो दु:ख क्यों होता? यह दशा ही तो दु:ख देती है, नहीं तो कौन दु:ख दे मेरेको! मेरे सत्संगकी बातें सुनकर दु:ख मिट जाय! यह मैं अभिमानसे नहीं कहता हूँ। मैं जो कहता हूँ, वे गीताजीकी, भागवतकी, सिद्धान्तकी बातें हैं।

आपको समझा देना मेरी शक्तिसे बाहरकी बात है! मैंने पहले ही कह दिया था कि मेरेको अपने मनकी भाप

निकालनी है। आप मेरे साथ ऐसा अत्याचार न करें–यह प्रार्थना है। इतनेपर भी आप न मानें तो जोधपुर नहीं आयेंगे! और हम क्या कर सकते हैं! मेरे पास कैदखाना तो है नहीं कि आपको कैदमें रख दूँ! यह है भी नहीं, करना चाहता भी नहीं! अपनी तो ऐसी बात है—

मन मिले तो मेला कीजै, चित्त मिले तो चेला।

ग्यान मिले तो सतगुरु कीजै, नहिं तो भला अकेला॥

भिक्षुक बेचारा क्या करें? उसको जो दे वह भी ठीक, जो न दे वह भी ठीक! इसलिये आपलोगोंके सामने बड़े प्रेमसे, अपनेपनसे कहता हूँ। अगर मैं आपको अपना न मानता और आप मेरेको अपना न मानते तो आपके सामने कैसे कहनेकी हिम्मत होती? और किस आशाको लेकर कहता? और क्यों कहता? क्यों उम्मीद रखता कि आप मानो? अपनापन है तो ऐसे कहता हूँ, नहीं तो नहीं कहता।

बहुत-सी बातें है। मैं भूल जाता हूँ। सब कहनेमें आती भी नहीं। भगवान्‌ने कृपा करके यह मनुष्यशरीर दिया है। रामायणमें आया है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर. 44। 3)

इसका अर्थ यह हुआ भगवान्‌का मन कल्याण करनेका है। अगर हम थोड़ा-सा निमित्त बन जायँ तो उनकी कृपासे बड़ी जल्दी कल्याण हो जाता है। इसलिये आप कृपा करें और अपने कल्याणके लिये श्रद्धा-विश्वासपूर्वक साधनमें लग जायँ।

★★★ ★★★ ★★★

मनुष्यमें एक कमजोरी होती है। उस कमजोरीकी पहचान यह है कि वह जड़का सहारा लेता है। वास्तवमें **जड़का उपयोग करना चाहिये, सहारा नहीं लेना चाहिये।** चित्र भी जड़ है। अत: सन्तोंके भी शरीरका, चित्रका सहारा न लेकर उनके सिद्धान्तका सहारा लेना चाहिये। सन्तोंने भी अपने प्राणोंकी परवाह न करके सिद्धान्तोंका पालन किया है। भगवान्‌का सहारा लेना चाहिये। रुपये-पैसे, वस्तु आदिका समय-समयपर उपयोग कर लेना है, पर उनको महत्त्व देकर उनका सहारा नहीं लेना है। ऐसा करनेमें ही आपका कल्याण है, इसमें सन्देह नहीं। जड़ लुभावना दीखता है तो यह आपकी कमजोरी है। इस कमजोरीका दूर करो और परमात्माके चरणोंका सहारा लो। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते हरदम उनके नामका जप करो। जहाँतक हमारेको समझमें आयी है, 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। इससे बड़ा लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं।

शास्त्रोंमें सन्त-महात्माओंकी बहुत महिमा आती है। परन्तु यह महिमा उनके सिद्धान्तोंको लेकर है। इन बल्बोंसे इतना प्रकाश हो रहा है तो इन बल्बोंकी महिमा नहीं है। महिमा बिजलीघरसे सम्बन्ध होनेकी है। बिजलीसे सम्बन्ध न हो तो न ये बल्ब प्रकाश करेंगे, न यन्त्र काम करेंगे। ऐसे ही सन्त-महात्माओंकी महिमा भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेसे है। इसलिये **वही सन्त-महात्मा है, जो दूसरोंको भगवान्‌के सम्मुख करता है, जड़ताके सम्मुख नहीं करता, अपने चित्रोंमें नहीं लगता, अपनी पूजामें नहीं लगता।**

आज जो समाजकी दुर्दशा हो रही है, उसका कारण यह है कि लोग परमात्माको, सन्तोंके सिद्धान्तोंको तो मानते नहीं और मनमानी करते हैं! भोग भोगने और रुपयों आदिका संग्रह करनेमें ही लगे हुए हैं! आदर-सत्कार हो जाय,

वाह–वाह हो जाय—इसके ही पीछे पड़े हुए हैं। परलोक बिगड़े या सुधरे, इसकी कोई परवाह नहीं। आज प्राय: ऐसी आँधी चल रही है। इसलिये आपलोग सावधान रहें। हमारे महाराजके गुरुने मुझसे किसी ठकुरानीको पत्र लिखवाया। उसमें एक दोहा लिखवाया—

नासत दूर निवारजो, आसत राखो अंग।

कलि झोला बहुत बाजसी, रहजो एकण संग॥

तात्पर्य है कि अपनमें नास्तिकता मत लाना, आस्तिक बने रहना। कलियुगमें तरह–तरहके झोंके आयेंगे, पर उनसे विचलित मत होना। सावधान रहना। इसलिये आप सब लोगोंको सावधान रहना चाहिये। बच्चे ठोकर खाकर गिर जाते हैं, पर फिर सँभल जाते हैं। गल्ती हो जाती है, पर सावधान रहेंगे तो फिर ठिकाने आ जायँगे। यदि नास्तिकतामें चले जायँगे तो पतन हो जायगा। **जो 'है', उसको मानना आस्तिकता है और जो 'नहीं' है, उसको मानना नास्तिकता है।** अविनाशीको महत्त्व देकर उसके आश्रित होना आस्तिकता है। उत्पन्न और नष्ट होनेवाले असत्‌को महत्त्व देना नास्तिकता है।

मेरे मनमें तरंग आ गयी तो कह दिया कि मैं जोधपुर नहीं आऊँगा। पर मेरी ऐसी भावन नहीं है। आपलोग बहुत अच्दे हैं जो सत्संगमें रुचि रखते हैं। मेरे स्वास्थ्यको लेकर वैद्य–डाक्टर कहते हैं कि चलो–फिरो मत, बोलो मत; यह तुम्हारे लिये ठीक नहीं है। वैद्योंने तो यहाँतक कहा कि यदि बोलो तो लेटे–लेटे बोलो। परन्तु मेरेको बोलनेमें कोई फर्क नहीं पड़ता। बोलनेसे मेरेको कोई तकलीफ नहीं होती। न परिश्रम होता है, न थकावट होती है। सुननेवाले आदरसे सुनें तो मेरेको बोलनेमें कोई तकलीफ नहीं होती, उल्टे उत्साह आता है! कोई तत्परतासे काममें लानेवाला हो तो रात और दिन बातें बता सकता हूँ!

आप कहते हैं कि एक–दोका कसूर हो तो सबका कसूर क्यों माना जाय? इस विषयेंमें मेरा कहना है कि आप सब लोग मिलकर दो–चार आदमियोंका भी सुधार नहीं कर सकते क्या? उनको (दोषी व्यक्तियोंको) प्रेमसे, आदसे समझाओ। उनका अहित नहीं करना है। वे जो काम कर रहे हैं, उससे उनका बड़ा नुकसान है। उस नुकसानसे उनको बचाओ। व्यक्तिका नाम मैंने चित्रके ऊपर छपा हुआ देखा है। उसने रुपयो ले–लेकर चित्र बेचा है, ऐसा मैंने सुना है। वह लोभके वशीभूत होकर ऐसा कर रहा है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। काम, क्रोध और लोभ–ये तीनों नरकके दरवाजे हैं। इन तीनोंमेंसे किसीके भी वशमें हो गये तो नरक तैयार है।

भगवान् किसीका भी अहित नहीं करते, पर जो सन्तोंका, भक्तोंका बुरा करता है, उनको दु:ख देता है, उनको भगवान् माफ नहीं करते—

सुने सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

(मानस, अयोध्या. 218। 2–3)

(2)

श्रोता—वे कहते हैं कि पूजा उसी व्यक्तिकी की जाती है, जो पूजनयी होता है।

स्वामीजी— जो पूजनीय होता है, उसकी बात माननी चाहिये।

श्रोता—आपकी तसवीरमें उनको भगवान्‌का रूप नजर आता है, इसलिये कहते हैं।

स्वामीजी— अगर मेरेको भगवान्‌का रूप मानते हैं तो मेरी बात क्या होनी चाहिये? भगवान्‌के पसन्दका काम होना चाहिये कि नहीं? **सन्तोंके सिद्धान्तको मानो, बस, यही उनकी पूजा है।** बात नहीं मानेंगे और शरीरकी पूजा करेंगे तो कोई राजी नहीं होगा। इसलिये बात मानो, पर व्यक्तिकी पूजा कभी मत करो।

एक बड़ी मार्मिक बात है, ध्यान देकर सुनें। **पूजनीय व्यक्तिमें अगर कोई विलक्षणता दीखती है तो वह विलक्षणता भगवान्‌की है, उसकी व्यक्तिगत नहीं है।** उसमें भगवान्‌की ही विभूति प्रतिबिम्बित होती है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(गीता 10। 41)

‘जो-जो भी ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग अर्थात् सामर्थ्य)-के अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।’

(एक साधुने मंचसे घोषणा की कि जो भाई-बहन चित्र लाये हों, वे अभी स्वामीजी महाराजके सामने ले आयें। सभी चित्रोंको यहीं जला दिया जायगा। इसके बाद अस्सीसे अधिक चित्र इकट्ठे हो गये।)

स्वामीजी—अब इनको जलानेका काम करो।.... अब कीर्तन करो। कोई भी मर जाय तो कीर्तन करना चाहिय!. ...***‘गोविन्द हरे गोपाल हरे, जय जय प्रभु दीनदयाल हरे।’***

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नम:॥

सेवामें विनम्र निवेदन

(वसीयत)

श्रीभगवान्‌की असीम है, अहैतुकी कृपासे ही जीवको मानव-शरीर मिलता है। इसका एकमात्र उद्देश्य केवल भगवत्प्राप्ति ही है। परन्तु मनुष्य इस शरीरको प्राप्त करनेके बाद अपने मूल उद्देश्यको भूलकर शरीरके साथ दृढ़तासे तादात्म्य कर लेता है और इसके सुखको ही परम सुख मानने लगता है। शरीरको सत्ता और महत्ता देकर उसके साथ अपना सम्बन्ध मान लेनेके कारण उसका शरीरसे इतना मोह हो जाता है कि इसका नामतक उसको प्रिय लगने लगता है। शरीरके सुखोंमें मान-बड़ाईका सुख सबसे सूक्ष्म होता है। इसकी प्राप्तिके लिये वह झूठ, कपट, बेईमानी आदि दुर्गुण-दुराचार भी करने लग जाता है। शरीरके नाममें प्रियता होनेसे उसमें दूसरोंसे अपनी प्रशंसा, स्तुतिकी चाहना रहती है। वह यह चाहता है कि जीवन-पर्यन्त मेरेको मान-बड़ाई मिले और मरनेके बाद मेरे नामकी कीर्ति हो। वह यह भूल जाता है कि केवल लौकिक व्यवहारके लिये शरीरका रखा हुआ नाम शरीर के नष्ट होने के बाद कोई अस्तित्व नहीं रखता। इस दृष्टिसे शरीरकी पूजा, मान-आदर एवं नामको बनाये रखनेका भाव किसी महत्त्वका नहीं है। परन्तु शरीरका नाम-आदर एवं नामकी स्तुति-प्रशंसाका भाव इतना व्यापक है कि मनुष्य अपने तथा अपने प्रियजनोंके साथ तो ऐसा व्यवहार करते ही हैं, प्रत्युत जो भगवदाज्ञा, महापुरुषवचन तथा शास्त्रमर्यादाके अनुसार सच्चे हृदयसे अपने लक्ष्य

(भगवत्प्राप्ति)-में लगे रहकर इन दोषोंसे दूर रहना चाहते हैं, उन साधकों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करने लग जाते हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन साधकोंको शरीर निष्प्राण होनेपर भी उसकी स्मृति बनाये रखनेके लिये वे उस शरीरको चित्र आबद्ध करते हैं एवं उसको बहुत ही साज-सज्जाके साथ अन्तिम-संस्कार-स्थलतक ले जाते हैं। विनाशी नामको अविनाशी बनानेके प्रयासमें वे उस संस्कार-स्थलपर छतरी, चबूतरी या मकान (स्मारक) आदि बना देते हैं। इसके सिवाय उनके शरीरसे सम्बन्धित एकपक्षीय घटनाओंको बढ़ा-चढ़ाकर उनको जीवनी, संस्मरण आदिके रूपमें लिखते और प्रकाशित करवाते हैं। कहनेको तो वे अपने-आपको उन साधकोंका श्रद्धालु कहते हैं, पर काम वहीं करते हैं, जिसका वे साधक निषेध करते हैं!

श्रद्धा-तत्त्व अविनाशी हैं। अतः उन साधकोंके अविनाशी सिद्धान्तों तथा वचनोंपर ही श्रद्धा होनी चाहिये, न कि विनाशी श्रद्धा नहीं। परन्तु जब मोह ही श्रद्धाका रूप धारण कर लेता है, तभी ये अनर्थ होते हैं। अतः भगवान्‌के शाश्वत, दिव्य, अलौकिक श्रीविग्रहकी पूजा तथा उनके अविनाशी नामकी स्मृतिको छोड़कर इन नाशवान् शरीरों तथा नामोंको महत्त्व देनेसे न केवल अपना जीवन ही निरर्थक होता है, प्रत्युत अपने साथ महान् धोखा भी होता है।

वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर मल-मूत्र बनानेकी एक मशीन ही है। इसको उत्तम-से-उत्तम भोजन या भगवान्‌का प्रसाद खिला दो तो वह मल बनकर निकल जायगा तथा उत्तम-से-उत्तम पेय या गंगाजल पिला दो तो वह मूत्र बनकर निकल जायगा। जबतक प्राण हैं, तबतक तो यह शरीर मल-मूत्र बनानेकी मशीन है और प्राण निकल जानेपर यह मुर्दा है, जिसको छू लेनेपर स्नान करना पड़ता है! वास्तवमें यह शरीर प्रतिक्षण ही मर रहा है, मुर्दा बन रहा है। इसमें जो वास्तविक तत्त्व (चेतन) है, उसका चित्र तो लिया ही नहीं जा सकता। चित्र लिया जाता है उसका शरीरका, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। इसलिये चित्र लेनेके बाद शरीर भी वैसा नहीं रहता, जैसा चित्र लेते समय था। इसलिये चित्रकी पूजा तो असत् ('नहीं')-की ही पूजा हुई। चित्रमें चित्रित शरीर निष्प्राण रहता है; अतः हाड़-मांसमय अपवित्र शरीरका चित्र तो मुर्देका भी मुर्दा हुआ!

हम अपनी मान्यतासे जिस पुरुषको महात्मा कहते हैं, वह अपने शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेसे ही महात्मा है, न कि शरीरसे सम्बन्ध रहनेके कारण। शरीरको तो वे मलके समान समझते हैं। अतः महात्माके कहे जानेवाले शरीरका आदर करना मलका आदर करना हुआ! क्या यह उचित है? यदि कोई कहे कि जैसे भगवान्‌के चित्र की पूजा आदि होती है, वैसे ही महात्माके चित्रकी भी पूजा आदि की जाय तो क्या आपत्ति है? तो यह कहना भी उचित नहीं है। कारण कि भगवान्‌का शरीर चिन्मय एंव अविनाशी होता है, जबकि महात्माका कहा जानेवाला शरीर पांचभौतिक होनेके कारण जड़ एवं विनाशी होता है। भगवान् सर्वव्यापी हैं; अतः ये चित्रमें भी हैं। परन्तु महात्माकी सर्वव्यापकता (शरीरसे अलग) भगवान्‌की सर्वव्यापकताके ही अन्तर्गत होती है। एक भगवान्‌के अन्तर्गत समस्त महात्मा हैं; अतः भगवान्‌की पूजाके अन्तर्गत सभी महात्माओंकी पूजा स्वतः हो जाती है। यदि महात्माओंके हाड़-मांसमय शरीरोंकी तथा उनके चित्रोंकी पूजा होने लगे तो इससे पुरुषोत्तम भगवान्‌की पूजामें बाधा पहुँचेगी, जो महात्माओंके सिद्धान्तसे सर्वथा विपरीत है। महात्मा तो संसारमें लोगोंको भगवान्‌की ओर लगानेके लिये आते हैं, न कि अपनी ओर लगानेके लिये! जो लोगोंको अपनी ओर (अपने ध्यान, पूजा आदिमें) लगाता है, वह तो भगवद्विरोधी होता है। वास्तवमें महात्मा कभी शरीरमें सीमित होता ही नहीं।

वास्तविक जीवनी या चरित्र वही होता है, जो सांगोपांग हो अर्थात् जीवनकी अच्छी-बुरी (सद्‌गुण-दुर्गुण,

सदाचार-दुराचार आदि) सब बातोंका यथार्थरूपसे वर्णन हो। अपने जीवनकी समस्त घटनाओंका यथार्थरूपसे मनुष्य स्वयं ही जान सकता है। दूसरे मनुष्य तो उसकी बाहरी क्रियाओंको देखकर अपनी बुद्धिके अनुसार उसके बारेमें अनुमानमात्र कर सकते हैं, जो प्रायः यथार्थ नहीं होता। आजकल जो जीवनी लिखी जाती है, उसमें दोषोंको छिपाकर गुणोंका ही मिथ्यारूपसे अधिक वर्णन करनेके कारण वह सांगोपांग तथा पूर्णरूपसे सत्य होती ही नहीं। वास्तवमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके चरित्रसे बढ़कर और किसीका चरित्र क्या हो सकता है! अतः उन्हींके चरित्रको पढ़ना-सुनना चाहिये और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये। जिसको हम महात्मा मानते हैं, उसका सिद्धान्त और उपदेश ही श्रेष्ठ होता है; अतः उसीके अनुसार अपना जीवन बनानेका यत्न करना चाहिये।

उपर्युक्त सभी बातोंपर विचार करके मैं सभी परिचित सन्तों तथा सद्गृहस्थोंमें एक 'विनम्र निवेदन' प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें सभी बातें मैंने व्यक्तिगत आधारपर प्रकट की हैं अर्थात् मैंने अपने व्यक्तिगत चित्र, स्मारक, जीवनी आदिका ही निषेध किया है। मेरी शारीरिक असमर्थताके समय तथा शरीर शान्त होनेके बाद इस शरीरके प्रति आपका क्या दायित्व रहेगा—इसका स्पष्ट निर्देश करना ही इस लेखका प्रयोजन है।

(1)

यदि यह शरीर चलने-फिरने, उठने-बैठने आदिमें असमर्थ हो जाय एवं वैद्यों-डाक्टरोंकी रायसे शरीरके रहनेकी कोई आशा प्रतीत न हो तो इसको गंगाजीके तटवर्ती स्थानपर ले जाया जाना चाहिये। उस समय किसी भी प्रकारकी औषधि आदिका प्रयोग न करके केवल गंगाजल तथा तुलसीदलका ही प्रयोग किया जाना चाहिये। उस समय अनवरतरूपसे भगवन्नामका जप तथा कीर्तन और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, श्रीविष्णुसहस्त्रनाम, श्रीरामचरित्रमानस आदि पूज्य ग्रन्थोंका श्रवण कराया जाना चाहिये।

(2)

इस शरीरके निष्प्राण होनेके बाद इसपर गोपीचन्दन एवं तुलसीमालाके सिवाय पुष्प, इत्र, गुलाल आदि का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये। निष्प्राण शरीरको साधु-परम्पराके अनुसार कपड़ेकी झोलीमें ले जाया जाना चाहिये, न कि लकड़ी आदिसे निर्मित वैकुण्ठी (विमान) आदिमें

जिस प्रकार इस शरीरकी जीवित-अवस्थामें मैं चरण-स्पर्श, दण्डवत् प्रणाम, परिक्रमा, माल्यार्पण, अपने नामकी जयकार आदिका निषेध करता आया हूँ, उसी प्रकार इस शरीरके निष्प्राण होनेके बाद भी चरण-स्पर्श, दण्डवत् प्रणाम, परिक्रमा, माल्यार्पण, अपने नामकी जयकार आदिका निषेध समझना चाहिये।

इस शरीरकी जीवित-अवस्थाके, मृत्यु-अवस्थाके तथा अन्तिम संस्कार आदिके चित्र (फोटो) लेनेका मैं सर्वथा निषेध करता हूँ।

(3)

मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि अन्य नगर या गाँवमें इस शरीरके शान्त होनेपर इसको वाहनमें रखकर गंगाजीके तटपर ले जाना चाहिये और वहीं इसका अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये। यदि किसी अपरिहार्य कारणसे ऐसा होना कदापि सम्भव न हो सके तो जिस नगर या गाँवमें शरीर शान्त हो जाय, वहीं गायोंके गाँवसे जंगलकी ओर जाने-आनेके मार्ग (गोवा)-में अथवा नगर या गाँवसे बाहर जहाँ गायें विश्राम आदि किया करती हैं, वहाँ इस शरीरका

सूर्यकी साक्षीमें अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये। इस शरीरके शान्त होनेपर किसीकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

अन्तिम संस्कारपर्यन्त केवल भजन-कीर्तन, भगवन्नाम-जप आदि ही होने चाहिये और अत्यन्त सादगीके साथ अन्तिम संस्कार करना चाहिये।

(4)

अन्तिम संस्कारके समय इस शरीरकी दैनिकोपयोगी सामग्री (कपड़े, खड़ाऊँ, जूते आदि)-को भी इस शरीरके साथ ही जला देना चाहिये तथा अवशिष्ट सामग्री (पुस्तकें, कमण्डलु आदि)-को पूजामें अथवा स्मृतिके रूपमें बिल्कुल नहीं रखना चाहिये, प्रत्युत उनका भी सामान्यतया उपयोग करते रहना चाहिये।

(5)

जिस स्थानपर इस शरीरका अन्तिम संस्कार किया जाय, वहाँ मेरी स्मृतिके रूपमें कुछ भी नहीं बनाना चाहिये, यहाँतक कि उस स्थानपर केवल पत्थर आदिको रखनेका भी मैं निषेध करता हूँ। अन्तिम संस्कारसे पूर्व वह स्थल जैसे उपेक्षित रहा है, इस शरीरके अन्तिम संस्कारके बाद भी वह स्थल वैसे ही उपेक्षित रहना चाहिये। अन्तिम संस्कारके बाद अस्थि आदि सम्पूर्ण अवशिष्ट सामग्रीको गंगाजीमें प्रवाहित कर देना चाहिये।

मेरी स्मृतिके रूपमें कहीं भी गौशाला, पाठशाला, चिकित्सालय आदि सेवार्थ संस्थाएँ नहीं बनानी चाहिये। अपने जीवनकालमें भी मैंने अपने लिये कभी कहीं किसी मकान आदिका निर्माण नहीं कराया है और इसके लिये किसीको प्रेरणा भी नहीं की है। यदि कोई व्यक्ति कहीं भी किसी मकान आदिको मेरे द्वारा अथवा मेरी प्रेरणासे निर्मित बताये तो उसको सर्वथा मिथ्या समझना चाहिये।

(6)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद सत्रहवीं, मेला या महोत्सव आदि बिल्कुल नहीं करना चाहिये और उन दिनोंमें किसी प्रकारकी कोई मिठायी आदि भी नहीं करना चाहिये। साधु-सन्त जिस प्रकार अबतक मेरे सामने भिक्षा आदि लाते रहे हैं, उसी प्रकार लाते रहना चाहिये। अगर सन्तोंके लिये सद्‌गृहस्थ अपने-आप भिक्षा लाते हैं तो उसी भिक्षाको स्वीकार करना चाहिये, जिसमें कोई मीठी चीज न हो। अगर कोई साधु या सद्‌गृहस्थ बाहरसे आ जायँ तो उनकी भोजन-व्यवस्थामें मिठाई बिल्कुल नहीं बनानी चाहिये, प्रत्युत उनके लिये भी साधारण भोजन ही बनाना चाहिये।

(7)

इस शरीरके शान्त होनेपर शोक अथवा शोक-सभा आदि नहीं करने चाहिये, प्रत्युत सत्रह दिनतक सत्संग, भजन-कीर्तन, भगवन्नाम-जप, गीतापाठ, श्रीरामचरितमानस-पाठ, सन्तवाणी-पाठ, भागवत-पाठ आदि आध्यात्मिक कृत्य ही होते रहने चाहिये। सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें इन दिनोंके ये ही मुख्य कृत्य माने गये हैं।

(8)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद सत्रहवीं आदि किसी भी अवसरपर यदि कोई सज्जन रुपया-पैसा, कपड़ा आदि कोई वस्तु भेंट करना चाहे तो नहीं लेना चाहिये अर्थात् किसीसे भी किसी प्रकारकी कोई भेंट बिल्कुल नहीं लेनी चाहिये। यदि कोई कहे कि हम तो मन्दिरमें भेंट चढ़ाते हैं तो इसको फालतू बात मानकर इसका विरोध करना चाहिये। बाहरसे कोई व्यक्ति किसी भी प्रकारकी कोई भेंट किसी भी माध्यमसे भेजे तो उसको सर्वथा अस्वीकार कर देना चाहिये। किसीसे भी भेंट न लेनेके साथ-साथ यह सावधानी भी रखनी चाहिये कि किसीको कोई भेंट चद्दर, किराया आदि नहीं दिया जाय।

जब सत्रहवींका भी निषेध है तो फिर बरसी (वार्षिक तिथि) आदिका भी निषेध समझना चाहिये।

(9)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद इस (शरीर)-से सम्बन्धित घटनाओंको जीवनी, स्मारिका, संस्मरण आदि किसी भी रूपमें प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिये। अन्तमें मैं अपने परिचित सभी सन्तों एवं सद्गृहस्थोंसे विनम्र निवेदन करता हूँ कि जिन बातोंका मैंने निषेध किया है, उनको किसी भी स्थितिमें नहीं किया जाना चाहिये। इस शरीरके शान्त होनेपर इन निर्देशोंके विपरीत आचरण करके तथा किसी प्रकारका विवाद, विरोध, मतभेद, झगड़ा, वितण्डावाद आदि अवाञ्छनीय स्थिति उत्पन्न करके अपनेको अपराध एवं पापका भागी नहीं बनाना चाहिये, प्रत्युत अत्यन्त धैर्य, प्रेम, सरलता एवं पारस्परिक विश्वास, निश्छल व्यवहारके साथ पूर्वोक्त निर्देशोंका पालन करते हुए भगवन्नाम-कीर्तनपूर्वक अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये। जब और जहाँ भी ऐसा संयोग हो, इस शरीरके सम्बन्धमें दिये गये निर्देशोंका पालन वहाँ उपस्थित प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्तिको करना चाहिये। मेरे जीवनकालमें मेरे द्वारा शरीरसे, वाणीसे, मनसे, जानमें, अनजानमें किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट पहुँचा हो तो मैं उन सभीसे विनम्र हृदयसे करबद्ध क्षमा माँगता हूँ। आशा है, सभी उदारतापूर्वक मेरेको क्षमा प्रदान करेंगे। राम.....राम.....राम.....।

इससे पहले मैं तीन बार विनम्र निवेदन (वसीयत) लिखवा चुका हूँ—1) माघ शुक्ल पंचमी, वि० सं० 2036, दिनांक 22 जनवरी, 1980 तथा 2) वैशाख शुक्ल तृतीया, वि० सं० 2037, दिनांक 17 अप्रैल, 1980 और 3) माघ शुक्ल पंचमी, वि० सं० 2046, दिनांक 31 जनवरी, 1990; परन्तु उनमें मेरेको पूरा सन्तोष नहीं है, इसलिये आवश्यक संशोधनके साथ पुन: यह चौाा विनम्र निवेदन लिखवाया गया है। अत: पूर्वलिखित तीनों 'विनम्र निवेदन' अब रद्द समझने चाहिये।

प्रस्तुत विनम्र निवेदन (वसीयत)-को मैंने राजेन्द्र कुमार धवनसे लिखवाय है, जिसको मैंने स्वस्थचित्तसे पढ़-सुनकर समझ लिया है।

दिनांक—मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (गीता जयन्ती), वि० सं०2054, तदनुसार 10 दिसम्बर, 1997, राम.....राम......राम.....।

हस्ताक्षर—परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज।

श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी आज्ञासे लिखा—

हस्ताक्षर—राजेन्द्र कुमार धवन (देहरादून)

हस्ताक्षर—

साक्षी 1—सिंहस्थलपीठधीश्वर श्री 1008 श्रीक्षमारामजी महाराज, श्रीरामधाम, सींथल

साक्षी 2—श्रीनवलरामजी महराज, आनन्द आश्रम, रानी बाजार, बीकानेर

साक्षी 3—स्वामी श्रीरामनिवासजी महाराज, रामद्वारा, लाडनूँ

साक्षी 4—श्रीशिवकिसनजी राठी, नया शहर, बीकानेर

साक्षी 5—श्रीब्रजरतनजी, डागा, भीनासर, बीकानेर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

मेरे विचार

वर्तमान समयकी आवश्यकताओंको देखते हुए मैं अपने कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति मेरे नामसे इन विचारों, सिद्धान्तोंके विरुद्ध आचरण करता दीखे तो उसको ऐसा करनेसे यथाशक्ति रोकनेकी चेष्टा की जाय।

मेरे दीक्षागुरुका शरीर शान्त होनेके बाद जब वि० सं० 1987 में मैंने उनकी बरसी कर ली, तब ऐसा पक्का विचार कर लिया कि अब एक तत्त्वप्राप्तिके सिवाय कुछ नहीं करना है। किसीसे कुछ माँगना नहीं है। रुपयोंको अपने पास न रखना है, न छूना है। अपनी ओरसे कहीं जाना नहीं है; जिसको गरज होगी, वह ले जायगा। इसके बाद मैं गीताप्रेसके संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सम्पर्कमें आया। वे मेरी दृष्टिमें भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। मेरे जीवनपर उनका विशेष प्रभाव पड़ा।

मैंने किसी भी व्यक्ति, संस्था, आश्रम आदिसे व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। यदि किसी हेतुसे जोड़ा भी हो तो वह तात्कालिक था, सदाके लिये नहीं। **मैं सदा तत्त्वका अनुयायी रहा हूँ, व्यक्तिका नहीं। मेरा सदासे यह विचार रहा है कि लोग मुझमें अथवा किसी व्यक्ति-विशेषमें न लगकर भगवान्‌में ही लगें। व्यक्तिपूजाका मैं कड़ा निषेध करता हूँ।**

मेरा कोई स्थान, मठ अथवा आश्रम नहीं है। मेरी कोई गद्दी नहीं है और न ही मैंने किसीको अपना शिष्य, प्रचारक अथवा उत्तराधिकारी बनाया है। **मेरे बाद मेरी पुस्तकें ही साधकोंका मार्ग-दर्शन करेंगी।** गीताप्रेसकी पुस्तकोंका प्रचार, गौरक्षा तथा सत्संगका मैं सदैव समर्थक रहा हूँ।

मैं अपना चित्र खींचने, चरण-स्पर्श करने, जय-जयकार करने, माला पहनाने आदिका कड़ा निषेध करता हूँ।

मैं प्रसाद या भेंट-रूपसे किसीको माला, दुपट्टा, वस्त्र, कम्बल आदि प्रदान नहीं करता। **मैं खुद भिक्षासे ही शरीर-निर्वाह करता हूँ।** सत्संग-कार्यक्रमके लिये रुपये (चन्दा) इकट्ठा करनेका मैं विरोध करता हूँ।

मैं किसीको भी आशीर्वाद, शाप या वरदान नहीं देता और नही अपनेको इसके योग्य समझता हूँ।

मैं अपने दर्शनकी अपेक्षा गंगाजी, सूर्य अथवा भगवद्विग्रहके दर्शनको ही अधिक महत्त्व देता हूँ।

रुपये और स्त्री—इन दोके स्पर्शको मैंने सर्वथा त्याग दिया है।

जिस पत्र-पत्रिका अथवा स्मारिकामें विज्ञापन छपते हों, उनमें मैं अपना लेख प्रकाशित करनेका निषेध करता हूँ। इसी तरह दूकान, व्यापार आदिके प्रचारके लिये प्रकाशित की जानेवाली सामग्री (कैलेण्डर आदि)-में भी मेरा नाम

छापनेका मैं निषेध करता हूँ। गीताप्रेसकी पुस्तकोंके प्रचारके सन्दर्भमें यह नियम लागू नहीं है।

मैंने सत्संग (प्रवचन)-में ऐसी मर्यादा रखी है कि पुरुष और स्त्रियाँ अलग-अलग बैठें। मेरे आगे थोड़ी दूरतक केवल पुरुष बैठें। पुरुषोंकी व्यवस्था पुरुष और स्त्रियोंकी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करें। किसी बातका समर्थन करने अथवा भगवान्‌की जय बोलनेके समय केवल पुरुष ही अपने हाथ ऊँचे करें, स्त्रियाँ नहीं।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनोंमें मैं भक्तियोगको सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ और परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता मानता हूँ।

जो वक्ता अपनेको मेरा अनुयायी अथवा कृपापात्र बनाकर लोगोंसे मान-बड़ाई करवाता है, रुपये लेता है, स्त्रियोंसे सम्पर्क रखता है, भेंट लेता है अथवा वस्तुएँ माँगता है, उसको ठग समझना चाहिये। जो मेरे नामसे रुपये इकट्ठा करता है, वह बड़ा पाप करता है। उसका पाप क्षमाके योग्य नहीं है।

—जुलाई 2002

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

प्रवचन-सार

श्रोता— आप अपनी फोटो क्यों नहीं खिचवाते? हमलोग फिर आपको याद कैसे करेंगे?

स्वामीजी—हमें नहीं, भगवान्‌को याद करो। फोटो खिंचवाना इसलिये बन्द किया कि लोग हमें याद करेंगे। हमें याद करनेसे फायदा नहीं है। फायदा भगवान्‌को याद करनेसे है। जो अपनी फोटो खिंचवाता है, वह भगवद्द्रोही है। भगवान्‌के चिन्तनमें बाधा लगा देना ठीक है क्या? (11.1.2000, प्रातः 9, सूरत)

श्रोता—आप अपनी फोटोके लिये मना क्यों करते हैं? जब आप नहीं रहेंगे, तब हम आपकी फोटो देखकर आपको याद करेंगे। जैसे, भगवान्‌की फोटो होती है तो भगवान्‌को याद करते हैं, पूजा करते हैं। आगे आनेवाली पीढ़ी भी दीखेगी कि ऐसे महाराजजी थे!

स्वामीजी—हम ऐसे पूजा करवाना चाहते नहीं। हम इसके योग्य नहीं है। हम चाहते हैं कि भगवान्‌की ही फोटो हो और भगवान्‌का ही पूजन हो, मनुष्यका पूजन न हो। अपनी फोटो लगानेसे भगवान्‌के चिन्तनमें बाधा लगेगी, विघ्न पड़ेगा। हम जितनी फोटुएँ लगायेंगे, उतनी भगवान्‌की फोटुएँ कम लगेंगी तो हानि ही होगी! हम अपनी तरफसे भगवान्‌की यादमें बाधा देना नहीं चाहते। भगवान्‌को याद करनेकी जैसी जरूरत है, वैसी हमें याद करनेकी जरूरत नहीं है.....नहीं है.....नहीं है.....! मनुष्यका कल्याण जैसे भगवान्‌को याद करनेसे होगा, वैसे हमें याद करनेसे नहीं होगा। क्या हम भगवान्‌के समकक्ष हैं जो भगवान्‌की फोटोकी जगह अपनी फोटो लगवायें?

अपनी फोटोका प्रचार करनेको मैंने अच्छा नहीं माना है। आप मेरी मान्यताको आदर दोगे या फोटोको आदर दोगे? (3. 10. 2000, प्रातः 8.30, कुचामन सिटी)

★★★ ★★★ ★★★

अभी मेरे विषयमें जो कुछ कहा गया, वह ठीक नहीं है। मैं नतमस्तक होकर कहता हूँ कि ऐसे (महिमाके) वचन मेरेको अच्छे नहीं लगते। वास्तवमें मेरी धृष्टता है कि मैं सुन रहा हूँ! आप सब लोग क्षमा करेंगे।.....व्यक्तिकी महिमा

करना मैं अनुचित समझता हूँ। मैं इसके लायक नहीं हूँ। मेरेको शर्म आती है! मैं एक पारमार्थिक बातमें चलनेकी चेष्टा कर रहा हूँ; तात्त्विक बातें मेरेको अच्छी लगती है; इस मार्गमें आगे बढ़ना चाहता हूँ—यह बात तो सच्ची है; परन्तु मैं महिमाके लायक नहीं हूँ। इस मार्गकी रुचि मेरे मनमें है, पर वह भी जैसी होनी चाहिये, वैसी नहीं है। मैं देखता हूँ, विचार करता हूँ तो मेरेमें बहुत-सी कमी है। कमी मैं रखना नहीं चाहता हूँ, पर अपनी शक्तिसे दूर नहीं कर सकता हूँ। भगवत्कृपासे कमी दूर होती है—यह मेरा विश्वास है।.....मैं सबसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि ऐसी (मेरी प्रशंसाकी) बात मेरेको न सुनायें। (16.11. 2000, प्रातः 9, पटना)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

मुख्य सिद्धान्त

1. मनुष्मात्रको परमात्मप्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है।

2. मनुष्य जिस वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय, वेश-भूषा आदिमें है, वहीं रहते हुए वह परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

3. मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें परमात्माको प्राप्त कर सकता है। इसके लिये उसे परिस्थिति बदलनेकी आवश्यकता नहीं है।

4. परमात्माकी प्राप्ति सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिकी तरह नहीं है। सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति तो कर्म करनेसे होती है, पर परमात्माकी प्राप्ति अपने लिये कुछ न करनेसे होती है। परमात्मप्राप्तिमें भाव तथा विवेक मुख्य है, क्रिया नहीं।

5. परमात्माकी प्राप्ति जड़ता (शरीर- इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि)-के द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके त्यागसे होती है।